पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका: विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित वार्षिक हिंदी ई-पत्रिका

वर्ष: 2; संख्या:2; 2021; पृष्ठ संख्या: 30-34

ताङखुल जनजाति का समाज एवं संस्कृति

✍ रिनचुई होराम

पूर्वोत्तर भारत विविध जनजातियों की मिलनभूमि है। इस क्षेत्र के आठों प्रदेशों में कई जनजातियाँ बसती हैं। इनमें से ताङखुल भी एक है। ताङखुल जनजाति की कई उपजातियाँ हैं। प्राचीन काल में इस जनजाति का कोई निश्चित निवासस्थल नहीं था। पर अब यह स्थायी रूप से बस गयी है। प्रस्तुत आलेख में इस जाति के समाज तथा संस्कृति पर सरसरी नजर डाली गयी है।

'ताङखुल जनजाति' मुख्यतः मणिपुर राज्य की प्रमुख जनजाति है, जो मुख्य रूप से उखुल एवं कामजोङ जिले में वास करती है। मणिपुर के अतिरिक्त बर्मा के कुछ भागों में भी इस जनजाति के लोग वास करते हैं। इनकी कुल 34 उपजातियाँ हैं। यह जनजाति सिर का शिकार (Head Hunting) करने वाले समूह में से एक होने के कारण पहाड़ों की चोटियों पर ही वास करती थी, ताकि उन पर होने वाले आक्रमणों के बारे में आसानी से पता लगा सके। इसी कारण उनका कोई निश्चित निवास स्थान नहीं हुआ करता था। ताङखुल जनजाति की अवस्थिति, रहन-सहन, वेश-भूषा, देवी-देवता, पर्व-त्योहार, परंपरा एवं मान्यता, आर्थिक स्थिति, साहित्य आदि को लेकर अपने स्वरूप एवं अपनी मान्यताएँ हैं।

अपने प्रयोजन के चलते ताङखुल जनजाति के लोग समय-समय पर अपना स्थान बदलते रहते थे। इनके युद्ध का काल (सिर का शिकार करने की प्रवृत्ति) समाप्त होने के बाद उन्हीं स्थानों पर ये स्थायी रूप से रहने लगे।

ताङखुल जनजाति के निवास स्थान को मुख्य रूप से 8 भागों बाँटा गया हैं- रफई (North Area), सोमरा (North-East Area), रेम (East Area), राइखाङ(South-East Area), कमो(South Area), खाउरई(South-West Area), खराओ(West Area) और खराओ-राओरा(North-East Area)[1]

इनमें प्रत्येक क्षेत्र की अपनी-अपनी बोली होती है, जो एक दूसरे से भिन्न हैं, लेकिन आस-पास के क्षेत्रों की बोलियों से मिलती हैं। बोली के

साथ उनके रहन-सहन, खान-पान, तौर-तरीके, मान्यताओं आदि में भी समानताएँ देखने को मिलती है। चूँकि यह जनजाति पहाड़ों में वास करती है, इसलिए इनके घर भी मुख्यतः लकड़ी के बने होते हैं, इसका कारण लकड़ी की प्रचुर उपलब्धता एवं शहर से दूरी या पत्थर व ईंट का अधिक लागत होना रहा है। सामान्यतः इनके घर दो टुकड़ों में बटे होते हैं, रसोई घर और शयन कक्ष। ये दोनों अलग-अलग जगह बनाये जाते हैं। बैठक-कक्ष के रूप में अलग से कोई कमरा नहीं बनाया जाता। रसोईघर को ही बैठक या मेहमान-कक्ष के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

पशु-पक्षियों को पालना इनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है। उनके लिए घर के आँगन में ही अलग से घर बनाये जाते हैं और गाय के लिए गाँव से दूर या तो खेतों में या किसी खाली स्थान पर गौशाला बनाकर सामान्यतः उनकी देख-रेख के लिए किसी को रख दिया जाता है। भैंसों को गाँव से थोड़ी दूर किसी एक स्थान में छोड़ दिया जाता है और समय-समय पर बारी-बारी से एक या दो व्यक्ति उन्हें देखने चले जाते हैं। इनका उपयोग मुख्य रूप से हल जोतने के लिए किया जाता है।

इस समाज में श्रम का समान विभाजन देखने को मिलता है। सामान्यतः घर का काम और बच्चों की देख-रेख महिलाएँ करती हैं, लेकिन जरूरत पड़ने पर पुरुष भी बराबर मदद करते हैं। ताङ्खुल पुरुष अधिकतर बल से संबंधित काम करते हैं, जैसे लकड़ी काटना, घर बनाना, शिकार पर जाना, माँस काटना आदि। महिलाओं के काम प्रायः हाथ की कलाकारी पर आधारित होते हैं।

ताङ्खुल समाज के वस्त्र मुख्यतः लाल एवं काले रंग के होते हैं और मुख्यतः हाथ के बुने हुए होते हैं। महिलाएँ ब्लाउज, कोंग्शांग, हुईसोन, खोम-मशिन, जईथिंग, मेखला और शॉल ओढ़ती हैं और पुरुष शॉल और मलाउ पहनते हैं। उनके कई प्रकार के शॉल एवं मेखला होते हैं। प्रत्येक वस्त्र के पीछे कोई न कोई कहानी जरूर होती है। चोंग्खोम कचोन महिलाओं के द्वारा ओढ़ी जाती है, जबकि राईवात कचोन, महिलाएँ व पुरुष दोनों ही ओढ़ते हैं। पुरुषों के द्वारा हाउरा, लुईरूम, थंकंग कचोन और नीचे 'मलाउ' पहना जाता है, लेकिन अब मलाउ केवल त्योहारों में या किसी कार्यक्रम में ही प्रयोग होता है।

ताङ्खुल पहले किसी धर्म को नहीं मानते थे। हाँ, उनके देवी-देवता कई थे। देवी-देवताओं के मुख्यतः दो प्रकार हैं- अच्छे देवी-देवता एवं अपदेवता। अच्छे देवताओं में शिम कमेओ, पुकाती-पकतांग, फुंग्लुई फिलाव हैं और अपदेवताओं में रमशुन, ङषोंग-ङलहे, कदनेह-

कदुम हैं। मान्यता है कि अपदेवता के संपर्क में आने पर ताङ्खुल लोग या तो बीमार हो जाते हैं या उनकी मृत्यु हो जाती है। वे यह भी मानते थे कि संसार में कोई शक्ति है, जिसने धरती, इंसान, पेड़-पौधे, जीव-जंतुओं आदि का निर्माण किया है। इनको वे 'वरिवरा' अर्थात् भगवान के नाम से जानते हैं।

ताङ्खुल लोगों का एक उत्सव प्रेमी समाज है। वे सालभर में कई उत्सव जैसे लुईर, फनित, मानई, लुई सोमखमसार, माङ्खप, मावोनज़ाई, थीसम आदि मनाते हैं। उनके अधिकतर पर्व-उत्सव कृषि पर आधारित हैं। लुईर फनित इनका सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण त्योहार है। यह चंद्र पंचांग के अनुसार फसल की बुआई के आरंभ हेतु फरवरी के मध्य में 12 दिन के लिए मनाया जाता है। इस समय गाँव के मुखिया के द्वारा फल व सब्जियों के बीज एवं धान उगा दिये जाते हैं ताकि गाँव के लोगों के द्वारा खेती का कार्य आरंभ किया जा सके। ऐसा माना जाता है कि यदि मुखिया से पहले किसी के द्वारा फसल की बुआई आरंभ कर दी गई, तो उसकी फसल अच्छी नहीं होगी। अतः गाँववासियों के द्वारा इस नियम का सख्ती से पालन किया जाता है। इस परंपरा के अलावा आजकल कई अन्य कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे हैं, जैसे सौन्दर्य प्रतियोगिता, रस्साकशी, कुश्ती, भाला फेंकना (जेवलीन थ्रो), युद्ध नृत्य आदि।

अप्रैल के महीने में दो दिन मानई फनित (औजारों का त्योहार) मनाया जाता है। यह विश्वकर्मा पूजा जैसी है। इस दिन कृषि एवं शिकार हेतु उपयोग होने वाले सारे औजारों पर चर्बी का तेल लगाकर पंखे के पास सूखने के लिए रख दिये जाते हैं। इस दौरान अच्छी फसल के लिए गाँव के बुजुर्गों के द्वारा देवी-देवताओं को शराब और माँस चढ़ाया जाता है।

बुआई खत्म होने के बाद आराम करने हेतु जुलाई या अगस्त के समय 5 दिन के लिए मांग्खप फनित उत्सव मनाया जाता है। इस त्योहार में परिवार के सभी सदस्य व उनके सभी रिश्तेदारों को अपने-अपने घरों में बुलाकर दावत देते हैं और एक दूसरे को माँस बाँटते हैं। साथ ही धूम-धाम से कई कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

साल खत्म होने की खुशी मनाने हेतु जवान युवक एवं युवतियों के द्वारा लोंग्र फनित उत्सव मनाया जाता है। इसमें गाँव के युवक-युवतियाँ पहले से ही एक कच्चा घर बना कर उसमें मिलकर खाते-पीते और सोते हैं। इस दौरान खाने के लिए उनको गाँववासियों द्वारा चंदे के रूप में फल, सब्ज़ियाँ, चावल, सूखा माँस आदि दिये जाते हैं। इसके बदले युवक-युवतियों द्वारा घर बनाने के लिए लकड़ी काटने, उसे धोकर लाने, घर बनाने

आदि कामों में गाँववासियों की मदद की जाती है। रात को नृत्य एवं गीत गाकर गाँववासियों का मनोरंजन किया जाता है।

थिशाम फनित साल के अंत में 7 से 10 दिनों तक मृतकों की मुक्ति हेतु मनाया जाने वाला उत्सव है। इस दौरान मृतक के नाम पर कई पशुओं की बलि दी जाती है। अक्सर खाना खाने के बाद घर के सभी सदस्य, पड़ोसी, दोस्त या कोई रिश्तेदार हों तो वे रसोईघर में ही बैठकर एक-दूसरे से बातचीत करते हैं। इस परंपरा को स्थानीय भाषा में 'मईसुम कचङ' कहते हैं।

पहले बच्चे का नामकरण परिवार के सबसे छोटे सदस्य के द्वारा नहीं किया जाता है। अन्यथा यह माना जाता है कि उसके जीवन में ऐसी घटना घटित होगी, जिसका वह भार ढो पाने में असमर्थ होगा। अतः शिशु का नामकरण परिवार के बुजुर्गों से सलाह लेकर एवं उसकी पारिवारिक परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है। कान छिदवाना ताङ्खुल समाज की एक पहचान है। पुरुष एवं महिलाएँ दोनों के ही 5 साल की उम्र में बाँस की लकड़ी से कान की छिदाई करवाते हैं। वे मानते हैं कि कान की छिदाई करने से वे ज़्यादा समझदार और तेज होते हैं।

ताङ्खुल समाज में सामान्यतः प्रेम विवाह का प्रचलन है। विवाह दो प्रकार से होते हैं- भाग कर अर्थात् बिना किसी रीति-रिवाज के लड़का लड़की को अपने घर ले आता है, फिर वे माता-पिता से आशीर्वाद लेते हैं। कुछ दिनों बाद लड़के के माता-पिता एवं बुजुर्ग लड़की के घर खबर देने जाते हैं। इसके कुछ दिनों बाद दोनों लड़का व लड़की, लड़की के घर आशीर्वाद लेने जाते हैं। विवाह के सारे रिवाज गिरजाघर में संपन्न किये जाते हैं। इस समाज में तलाकशुदा महिला या विधवाएँ पुनः विवाह कर सकती हैं। प्राय: विवाह के लिए मामा की बेटियों को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि मामा के बेटे का बुआ एवं माँसी की बेटियों में विवाह करना वर्जित है।

ताङ्खुल समाज आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ समाज है। इनकी आर्थिक स्थिति मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। वे मुख्य रूप से धान की खेती करते हैं। इनके अतिरिक्त जई , मक्का उगाते हैं। सब्ज़ियों में आलू, स्क्वाश, लहसुन, अदरक, मटर, राजमा, अरबी, कद्दू, पत्ता गोभी, फूल गोभी, मिर्च, बाँस आदि उगाये जाते हैं। फलों में परंपरागत रूप से नींबू, संतरे, केले उगाए जाते रहे हैं, लेकिन आजकल कीवी, अवोकेदो जैसे फलों की भी प्रचुर मात्रा में खेती होने लगी है। कृषि के अतिरिक्त महिलाओं द्वारा कपड़े बुनकर व पुरुषों के द्वारा टोकरी, काली मिट्टी के बर्तन आदि बनाकर, लकड़ी काटकर या मज़दूरी करके

धनार्जन किया जाता है। आजकल कुछ लोग सरकारी नौकरियाँ भी करने लगे हैं।

ताङ्खुल साहित्य लिखित रूप में बहुत ही कम उपलब्ध है। लोकगीत एवं लोककथाओं के द्वारा ही प्राय: इनके बारे में जानकारी मिलती है। अँग्रेज मिसनरी विल्लियम पेतिगृउ ने सन् 1890 में उख्रुल जिले में इस समाज के लागों को शिक्षा एवं ईसाईयत दोनों से परिचित कराया था। अतः उनके आने के बाद ही इनका लिखना-पढ़ना शुरू हुआ। अब इनका साहित्य उपलब्ध होने लगा है, लेकिन अभी भी ताङ्खुल रचनाशीलता को बहुत बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

संदर्भ-सूची:

Tangkhul Miwurlung-K.Shirmay,page no.18

ग्रंथ-सूची:

Horam,R. and Horam,M,Ed. Naga Festival. New Delhi:Sunmarg Publishers and Distributors, 2015.

Mahaphang,S,P,Revd. Tangkhul Ungram Kala Ameoyan. Imphal-East:RIDJ Offset Printer's, 2015.

Shirmay, K. Tangkhul Miwurlung. Imphal: Bhagyawati Karyala Chudachand Works, 1967.

संपर्क-सूत्र :
H/3/63/ लांगोल हाऊसिंग कॉम्प्लेक्स
इम्फाल,मणिपुर
rinchui.horam19@gmail.com

पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका